Dr. Vandana Suman
Associate professor
Dept. of Philosophy
H.D. Jain College, Ara
M.A Semester - 1 Philosophy CC-01
Indian Epistemology & Logic



# Validity of Knowledge - "Paratah Pramanya Vada"



न्याय का मत यह है कि ज्ञान वस्तु का प्रकाशन मात्र है। वह स्वतः न प्रमाण है और न अप्रमाण। ज्ञान का प्रामाण्य वस्तुस्थिति से इसका संवाद (harmony) होने पर निर्भर होता है। यदि इसका वस्तुस्थिति से संवाद नहीं है तो वह अप्रमाण है। जब ज्ञान वस्तु के स्वरूप गुणों और सम्बन्धों को वैसे ही बतलाता है जैसे वे वास्तव में हैं, तब ज्ञान यथार्थ होता है। जब ज्ञान वस्तु के स्वरूप गुणों और सम्बन्धों को वैसा नहीं बताता जैसे वे वास्तव में हैं, तब वह अयथार्थ होता है। इसलिए प्रामाण्य (Validity) और अप्रामाण्य (Invalidity) ज्ञान में स्वतः नहीं होते, बल्कि परतः होते हैं। प्रामाण्य और अप्रामाण्य ज्ञान के असाधारण हेतुओं पर निर्भर नहीं होते बल्कि विशेषतः हेतुओं पर निर्भर होते हैं। ये विशेषतः हेतु हैं ज्ञान को उत्पन्न करने वाले कारणों के गुण-दोष। प्रामाण्य ज्ञान के कारणों के गुण पर और अप्रामाण्य उनके दोष पर निर्भर होता है। प्रामाण्य न ज्ञान की उत्पत्ति के कारणों पर और न उनके दोषाभाव पर ही निर्भर होता है। प्रामाण्य की उत्पत्ति ज्ञान की उत्पत्ति के साधारण कारणों के गुण से होती है। प्रामाण्य की उत्पत्ति स्वतः नहीं बल्कि परतः होती है। इसी प्रकार

अप्रामाण्य की भी उत्पत्ति स्वतः नहीं, बल्कि परतः होती है। अप्रामाण्य न ज्ञान के साधारण कारणों से उत्पन्न होता है और न उनके गुण मात्र से, बल्कि उनके दोष से उत्पन्न होता है। इस प्रकार गुण से ज्ञान प्रमाण होता है और दोष से अप्रमाण। बल्कि प्रामाण्य और अप्रामाण्य इसमें बाद में पैदा होते हैं। प्रामाण्य और अप्रामाण्य परतः होते हैं यानी ज्ञान के आगन्तुक धर्म हैं। और इन्द्रिय अर्थ का सन्निकर्ष प्रत्यक्ष ज्ञान का गुण है जिससे प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण होता है। अर्थ का सूक्ष्म या बहुत दूर होना, इन्द्रिय का दूषित होना या मन का दूषित होना दोष है जिससे प्रत्यक्ष ज्ञान अप्रमाण होता है। विशेष कार्य को उत्पन्न करने के लिए विशेष कारण की आवश्यकता होती है। प्रामाण्य ज्ञान का एक विशेष धर्म है और अप्रामाण्य दूसरा विशेष धर्म। इसलिए इनकी उत्पत्ति ज्ञान के साधारण कारणों की ऐसी विशेषताओं से होनी चाहिए जो प्रामाण्य और अप्रामाण्य के अनुकूल या प्रतिकूल हों। इस प्रकार प्रामाण्य और अप्रामाण्य बाहरी स्थितियों पर निर्भर

(Sebstimaic) होते हैं।

कि ज्ञान के प्रामाण्य [illegible] प्रश्न यह होता है
कैसे होता है या अप्रामाण्य का ज्ञान
अप्रामाण्य [illegible] न्याय प्रामाण्य और
ज्ञान को भी उत्पत्ति की तरह उनके
ज्ञान की उत्पत्ति परतः मानता है। यथार्थ
ज्ञान की उत्पत्ति के समय उसकी यथार्थता का
ज्ञान नहीं होता। इसीप्रकार अयथार्थ ज्ञान
की उत्पत्ति के समय उसकी अयथार्थता
का ज्ञान नहीं होता। यदि प्रामाण्य का
ज्ञान उसकी उत्पत्ति के समय ही होता है
तो ज्ञाता के मन में कोई संशय ही उत्पन्न
न होता और यह ज्ञान की यथार्थता
को जाँचने का प्रयत्न ही न करता। यदि
अप्रामाण्य का ज्ञान भी उसकी उत्पत्ति
के समय ही होता तो अनुमान किया
ही न होता। वास्तव में होता यह है
कि मैं किसी चीज का ज्ञान होने पर
अपने ज्ञान के प्रामाण्य में सन्देह होता
है। मान लीजिए कि मैं सामने पानी
देख रहा हूँ। लेकिन मैं उसे पीने के
लिए तुरन्त नहीं दौड़ पड़ता। मैं
पहले यह जानना चाहता हूँ कि वास्तव
में वह पानी ही है या और कुछ?
तब मैं निकट आकर उसको छूता
हूँ और मुँह में डालता हूँ। जिससे
मेरी प्यास बुझ जाती है तो इससे
मैं यह जानता हूँ कि वह वास्तव में
पानी है। अर्थात मुझे जो पानी का

ज्ञान हुआ वह यथार्थ है। ज्ञान का
जानना प्रवृत्ति सामर्थ्य है। प्रवृत्ति
सामर्थ्य से ही प्रामाण्य जाना जाता
है। अगर प्रवृत्ति सामर्थ्य (Sufficiency)
(efficiency) नहीं है, तो इसके अप्रामाण्य का अनुमान होता है।
अगर ज्ञान विसंवादी है तो जैसे जल से प्यास नहीं बुझती (प्रवृत्ति विसंवाद) तो वह पानी नहीं, बल्कि भ्रम है। इसप्रकार प्रवृत्ति सामर्थ्य से प्रामाण्य का अनुमान होता है और प्रवृत्ति विसंवाद से अप्रामाण्य का अनुमान होता है। व्यवहार में सफलता ही प्रामाण्य की कसौटी है और व्यवहार में असफलता अप्रामाण्य की कसौटी है। ज्ञान के वस्तुस्थिति के अनुसार होने से उसे व्यवहार में सफलता मिलती है और उसके वस्तुस्थिति के अनुसार न होने से व्यवहार में असफलता होती है।



इस प्रकार हम देखते हैं कि न्याय के प्रामाण्य सिद्धान्त में वस्तुवाद (realism) और व्यवहारवाद (pragmatism) का मिश्रण है। न्याय-वैशेषिक के अनुसार प्रामाण्य ज्ञान का वास्तविकता से संवाद (agreement) और अप्रामाण्य ज्ञान का वास्तविकता से विसंवाद (disagreement) है। क्योंकि

वाद है
प्रामाण्य की (विज्ञान) सफल चेष्टा
कसौटी है और असफल
चेष्टा अप्रामाण्य की कसौटी।

न्याय बाह्यार्थवाद को मानने वाला है। वह जगत को ज्ञान,
जीवात्मा और परमात्मा से भिन्न मानता
है। यह जगत परमाणुओं से उत्पन्न और
चैतन्य निरपेक्ष है। न्याय बौद्धों के
योगाचार-सम्प्रदाय के विज्ञानवाद का
खण्डन करता है। अद्वैत वेदान्त के मायावाद
का भी नैयायिकों ने खण्डन किया है।
न्याय का बाह्यार्थवाद [ज्ञेयता] के
ऊपर आधारित है। ज्ञान अर्थ-प्रकाशक
यानी वस्तुओं की अभिव्यक्ति है।
आत्मा ज्ञान के द्वारा बाह्य जगत
के स्वरूप को जानता है। न्याय ने
ज्ञान की मीमांसा करने के बाद बाह्यार्थ-
वाद को अपनाया है। इसलिए न्याय
के सिद्धान्त को तार्किक बाह्यार्थवाद
कहा जा सकता है।

न्याय के अनुसार उत्पत्ति
और ज्ञप्ति की दोनों ही परतः हैं। ज्ञान
के प्रामाण्य और अप्रामाण्य दोनों ही
कुछ बाह्य कारकों पर आधारित होते हैं।
अतः न्याय का परतः प्रामाण्यवाद है।